

छात्रों की भावनाएँ और नेतृत्व की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ: बांग्लादेश से सबक

लेखक- डॉ. जसवीर दलाल, दिल्ली विश्वविद्यालय

छात्रों की वास्तविक समस्याओं से शुरू हुआ आंदोलन कब और कैसे राजनीतिक शक्तियों के सत्ता संघर्ष का माध्यम बन जाता है? यह प्रश्न केवल किसी सरकार के समर्थन या विरोध का नहीं, युवाओं के विश्वास और भविष्य का है। परीक्षा की तैयारी में वर्षों लगाने वाला छात्र जब पेपर लीक, भर्ती में अनियमितता या अवसरों की असमानता देखता है, तो उसका आक्रोश स्वाभाविक है। उसकी चिंता नौकरी, परिवार की अपेक्षाओं और अपने परिश्रम के सम्मान से जुड़ी होती है। यही आक्रोश सामूहिक आवाज बनकर व्यवस्था को सुधारने की ताकत पैदा करता है। लेकिन जब आंदोलन का विस्तार होता है, तब उसमें अलग-अलग राजनीतिक उद्देश्य रखने वाले समूह भी जुड़ सकते हैं। ऐसे समय यह देखना आवश्यक है कि छात्रों की मूल माँगें निर्णयों के केंद्र में बनी हुई हैं या उनका विश्वास किसी दूसरे लक्ष्य के लिए इस्तेमाल होने लगा है। आंदोलन की दिशा और नेतृत्व की जवाबदेही का प्रश्न यहीं से शुरू होता है। वामपंथी छात्र संगठन ऑल इंडिया स्टूडेंट्स एसोसिएशन (आइसा) की राष्ट्रीय अध्यक्ष नेहा बोरा का हालिया बयान इसी संदर्भ में विचारणीय है। उन्होंने बांग्लादेश में वर्ष 2024 में हुए युवा आंदोलन से प्रेरणा लेने की बात कही और कहा कि इस आंदोलन ने “हमें रास्ता दिखाया” की बात कही। इसी राजनीतिक विवाद के बीच प्रशांत भूषण ने भी ऐसे आंदोलनों के माध्यम से सत्ता परिवर्तन की इच्छा व्यक्त की। चुनावी और संवैधानिक प्रक्रियाओं को दरकिनार कर सत्ता परिवर्तन का प्रयास लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल सिद्धांतों के विपरीत है। आंदोलन का नेतृत्व करने वालों के लिए युवाओं में उत्साह जगाने के साथ उसके उद्देश्यों, दिशा और तरीकों को पारदर्शी रखना भी ज़रूरी है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में आंदोलनों से राजनीतिक दलों का जुड़ना स्वाभाविक है। चिंता तब बढ़ती है, जब मूल समस्याओं के समाधान की जगह श्रेय लेने और नेतृत्व की राजनीतिक ताकत तथा सोशल मीडिया पर लोकप्रियता बढ़ाने की होड़ प्रमुख हो जाए। इसलिए पूछना ज़रूरी है कि क्या प्रस्तावित माँगें वास्तविक समाधान देंगी, उन्हें तय करने में प्रतिभागियों की सहमति ली गई है और बातचीत, समझौतों तथा संसाधनों का विवरण सार्वजनिक है? पारदर्शिता के अभाव में छात्र जोखिम उठाते रहते हैं, जबकि आंदोलन की दिशा कुछ लोग तय करते हैं।

इन प्रश्नों को समझने के लिए बांग्लादेश के छात्र आंदोलन की शुरुआत, उसकी बदलती दिशा और अंततः सामने आए परिणामों पर नज़र डालना ज़रूरी है। जून 2024 में उच्च न्यायालय के निर्णय से स्वतंत्रता सेनानियों के परिवारों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की बहाली का रास्ता खुला। इसके विरुद्ध छात्रों का विरोध तेज हुआ। 21 जुलाई को सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था बदलते हुए 93 प्रतिशत पद योग्यता के आधार पर भरने का निर्देश दिया। स्वतंत्रता सेनानियों के परिवारों का आरक्षण 30 प्रतिशत से घटाकर पाँच प्रतिशत किया गया और शेष दो प्रतिशत अन्य निर्धारित वर्गों के लिए रखा गया। सरकार ने 23 जुलाई को यह निर्णय स्वीकार कर लिया। इस तरह हसीना सरकार के पतन से पहले ही छात्रों की आरंभिक माँग काफी हद तक पूरी हो चुकी थी। लेकिन तब तक प्रायोजित प्रदर्शनकारियों पर बलप्रयोग, लोगों की मौत और गिरफ्तारियों ने आंदोलन की दिशा बदल दी थी। आरक्षण सुधार के साथ अब पीड़ितों को न्याय, गिरफ्तार लोगों की रिहाई और जिम्मेदार अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की माँगें भी जुड़ गई थीं। संयुक्त राष्ट्र की जाँच ने तत्कालीन सरकार और सुरक्षा तंत्र द्वारा गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन दर्ज किए तथा अनुमान लगाया कि हिंसा में 1,400 तक लोग मारे गए हो सकते हैं। इनमें बच्चे भी शामिल थे। इसलिए आंदोलन के विस्तार और उसकी बदलती माँगों को समझना आवश्यक है। साथ ही, यह घटनाक्रम दिखाता है कि शिकायतों का समय रहते समाधान न होना और प्रदर्शनकारियों के प्रति कठोर प्रतिक्रिया किसी सीमित विवाद को व्यापक राजनीतिक संकट में बदल सकती है। परिणामस्वरूप, बढ़ते विरोध के बीच पाँच अगस्त 2024 को शेख हसीना देश छोड़कर भारत आ

गई। इसके तीन दिन बाद मुहम्मद यूनुस के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बनी, जिसमें छात्र आंदोलन के प्रमुख चेहरों नाहिद इस्लाम और आसिफ महमूद को सलाहकार के रूप में स्थान मिला। इस तरह आंदोलन के कुछ प्रमुख चेहरे सत्ता का हिस्सा बन गए। अब उनकी जिम्मेदारी थी कि जिन छात्रों के समर्थन और संघर्ष से उन्हें यह अवसर मिला था, उनकी माँगों को ठोस नीतियों और सुधारों में बदलें। लेकिन बाद के घटनाक्रम में कट्टरपंथी समूहों की भूमिका और विदेशी प्रभाव को लेकर उठे सवालोंने इस परिवर्तन की दिशा पर चिंता पैदा की। आशंका यह रही कि छात्रों के संघर्ष से पैदा हुआ राजनीतिक अवसर उनकी समस्याओं के समाधान के बजाय दूसरी शक्तियों के हित साधने का माध्यम बन गया। इसी संदर्भ में आंदोलन के पीछे सक्रिय संगठन और रणनीतिक नेतृत्व की भूमिका को समझना भी ज़रूरी है। सितंबर 2024 में न्यूयॉर्क के एक सार्वजनिक कार्यक्रम में मुहम्मद यूनुस ने महफूज आलम को आंदोलन का प्रमुख रणनीतिकार बताया। इस बयान से आंदोलन में समन्वय और योजनाबद्ध नेतृत्व की भूमिका सामने आती है। प्रश्न यह है कि रणनीति बनाने और निर्णय लेने की प्रक्रिया में सामान्य छात्रों की कोई भागीदारी थी भी या नहीं?

आंदोलन की रणनीति और सत्ता परिवर्तन के बाद बने राजनीतिक समीकरणों की चर्चा के साथ विदेशी प्रभाव का प्रश्न भी जुड़ा है। बंगाल की खाड़ी में बांग्लादेश की स्थिति, समुद्री संपर्क और क्षेत्रीय शक्ति-संतुलन के कारण वहाँ होने वाले राजनीतिक बदलाव बाहरी शक्तियों के लिए भी महत्व रखते हैं। इसी पृष्ठभूमि में अमेरिकी भूमिका, सेंट मार्टिन द्वीप और संभावित सैन्य सुविधाओं को लेकर आरोप सामने आए। मई 2024 में शेख हसीना ने दावा किया था कि एक विदेशी व्यक्ति ने एयरबेस की अनुमति के बदले उनकी सत्ता में सहज वापसी का प्रस्ताव दिया था। विदेशी प्रभाव की इस बहस का एक महत्वपूर्ण पहलू राजनीतिक कार्यक्रमों के लिए मिलने वाला बाहरी वित्तपोषण भी है। बांग्लादेश में 2017-2024 के दौरान USAID और ब्रिटिश DFID से वित्तपोषित एक कार्यक्रम में राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा युवाओं को नेतृत्व प्रशिक्षण देने और उनकी राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने की गतिविधियाँ शामिल थीं। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे कार्यक्रमों के माध्यम से बाहरी शक्तियों ने अपने हित साधने के लिए राजनीतिक परिस्थितियों को प्रभावित किया? कैसे छात्रों को भ्रमित कर उनकी भावनाओं का लाभ उठाया गया? इन प्रश्नों को समझना आवश्यक है। ऐसे कार्यक्रमों के वित्तपोषण, उद्देश्यों और गतिविधियों पर सरकार की सतर्क निगरानी होनी चाहिए। जाँच में सामने आए तथ्य समय रहते प्रमाणों सहित सार्वजनिक किए जाने चाहिए, ताकि युवाओं की स्वतंत्र निर्णय क्षमता और राष्ट्रीय हित सुरक्षित रहें।

इन सबके बीच मूल प्रश्न यही है कि इस लंबे संघर्ष से बांग्लादेश के सामान्य छात्रों को अंततः क्या मिला? आरक्षण सुधार उनकी ठोस उपलब्धि थी, जो हसीना सरकार के पतन से पहले ही मिल चुकी थी। राजनीतिक महत्वाकांक्षा रखने वाले कुछ छात्र नेताओं को नई पहचान मिली और वे शासन तक पहुँचे। लेकिन फरवरी 2026 के चुनाव में आंदोलन से उभरी नेशनल सिटिजन पार्टी ने गठबंधन के अंतर्गत 30 सीटों पर चुनाव लड़कर छह सीटें जीतीं, जबकि सत्ता स्थापित बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी के हाथ में आई। यह परिणाम सवाल खड़ा करता है कि क्या छात्रों की वास्तविक समस्याओं से शुरू हुआ आंदोलन आगे चलकर भीड़ के सहारे कुछ नेताओं की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ पूरी करने का माध्यम बन गया था। ऐसे में यह प्रश्न उठता है कि क्या सामान्य छात्रों के संघर्ष का राजनीतिक इस्तेमाल हुआ और उनकी मूल समस्याएँ सत्ता की प्रतिस्पर्धा में पीछे छूट गईं? चुनाव प्रचार के दौरान प्रमुख युवा नेता शरीफ उस्मान हादी की हत्या ने भी गंभीर सवाल खड़े किए। यह अनुभव बताता है कि आंदोलन की लोकप्रियता को स्वच्छ राजनीतिक विकल्प में बदलना आसान नहीं है। आंदोलन की वास्तविक सफलता सामान्य छात्रों की समस्याओं के समाधान और उन्हें मिले न्याय, सुरक्षा तथा बेहतर अवसरों से आँकी जानी चाहिए, न कि केवल सत्ता परिवर्तन से। इसके अलावा, सामान्य छात्रों की स्थिति का मूल्यांकन भी ज़रूरी है। इस अलोकतांत्रिक आंदोलन के माध्यम से किसी छात्र नेता का सत्ता तक पहुँचना सभी छात्रों की समस्याओं के समाधान का प्रमाण नहीं है। राजनीतिक

बदलाव तभी सार्थक होगा, जब उसका लाभ उन युवाओं तक पहुँचे जिन्होंने अपने संघर्ष और त्याग से उसे संभव बनाया। लेकिन बांग्लादेश में सामान्य छात्रों की यह अपेक्षा काफी हद तक अधूरी रही।

बांग्लादेश के अनुभव से भारत के लिए भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न निकलता है - छात्रों के नाम पर चलने वाले आंदोलनों की दिशा उनकी वास्तविक समस्याओं के समाधान से कितनी जुड़ी रहती है? भारत में पेपर लीक और परीक्षा संबंधी अनियमितताओं के विरुद्ध CJP के प्रदर्शनों में शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान के इस्तीफे की माँग प्रमुख थी। जुलाई 2026 में उनके इस्तीफे और अन्य माँगों पर सहमति की घोषणा के बाद नेतृत्व ने उस चरण का प्रदर्शन समाप्त कर दिया। लेकिन किसी मंत्री का पद छोड़ना और परीक्षा व्यवस्था की खामियाँ दूर होना दो अलग उपलब्धियाँ हैं। मंत्री का इस्तीफा जवाबदेही की एक कड़ी हो सकता है; छात्रों का भविष्य सुरक्षित करने की जिम्मेदारी उसके बाद भी बनी रहती है। क्या इस्तीफे से प्रतियोगी परीक्षाओं में पेपर लीक की समस्या समाप्त हो गई? क्या प्रभावित छात्रों को राहत मिली? क्या ऐसी भरोसेमंद व्यवस्था बनी जिससे भविष्य में उनकी मेहनत, समय और अवसर फिर इसी तरह बर्बाद न हों? सरकार ने परीक्षा सुधार, कठोर दंड और त्वरित सुनवाई के उपायों की घोषणा की थी। इसलिए अब सरकार और आंदोलन के नेतृत्व, दोनों से पूछा जाना चाहिए कि इन उपायों का क्रियान्वयन कहाँ तक पहुँचा और छात्रों को उनका क्या लाभ मिला। नेतृत्व की जवाबदेही का प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है। क्या आंदोलन की माँगें तय करते समय सामान्य छात्रों से चर्चा कर उनकी सहमति ली गई थी? क्या प्रस्तावित माँगों से उनकी समस्याओं का स्थायी समाधान संभव था? आंदोलन के वित्तपोषण, कार्यक्रम, प्रदर्शन समाप्त करने के निर्णय में प्रतिभागियों की क्या भूमिका थी और स्वीकार की गई माँगों पर आगे काम करने की जिम्मेदारी किसने ली? यदि इस्तीफे का श्रेय लेने, राजनीतिक पहचान बनाने और सोशल मीडिया पर लोकप्रियता बढ़ाने की होड़ आगे आ जाए, जबकि परीक्षा सुधारों की निगरानी पीछे छूट जाए, तो यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि छात्रों के आक्रोश का उपयोग किसके हित में हुआ। क्या उनकी समस्याओं के समाधान के लिए जुटी ऊर्जा को कुछ व्यक्तियों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की ओर मोड़ दिया गया? इस प्रश्न का उत्तर नेतृत्व के प्रचार से अधिक उसके काम और छात्रों को मिले परिणामों में खोजना होगा।

इसके बाद आंदोलन का दूसरा चरण सामने आता है। परीक्षा संबंधी अनियमितताओं के विरुद्ध सक्रिय रहा CJP नेतृत्व अब मतदाता सूची के विशेष गहन पुनरीक्षण में कथित गड़बड़ियों को लेकर मुख्य निर्वाचन आयुक्त के इस्तीफे की माँग करता है और माँग पूरी न होने पर देशव्यापी प्रदर्शन की घोषणा करता है। यहाँ फिर वही प्रश्न उठता है - क्या किसी पदाधिकारी का इस्तीफा बताई जा रही समस्या का पर्याप्त समाधान है? नेतृत्व को स्पष्ट करना चाहिए कि उसकी माँगों से इन उद्देश्यों की पूर्ति कैसे होगी। इसी दौरान भारत सरकार और मुकेश अंबानी पर विदेशी कारोबारी एलॉन मस्क की टिप्पणियाँ प्रदर्शनकारियों के आक्रोश को और भड़काने का काम करती दिखाई देती हैं। इसलिए बाहरी ताकतों के हितों को भी समझना ज़रूरी है। उनका समर्थन करने वालों को बताना चाहिए कि वे किस तथ्य से सहमत हैं और उसमें भारतीय नागरिकों का हित कहाँ देखते हैं। इसी राजनीतिक वातावरण में नेहा बोरा बांग्लादेश के युवा आंदोलन को प्रेरणा बताते हुए उसके द्वारा "हमें रास्ता दिखाने" की बात कहती हैं। प्रशांत भूषण भी सत्ता परिवर्तन की इच्छा व्यक्त करते हैं। इन वक्तव्यों को साथ रखकर देखने पर आंदोलन के राजनीतिक लक्ष्य पर सवाल उठता है - क्या उद्देश्य विशिष्ट शिकायतों का समाधान और संस्थागत सुधार है, या इस जनसमर्थन को सरकार बदलने की व्यापक राजनीति से जोड़ना है? बांग्लादेश के उदाहरण की प्रशंसा करने वाले नेतृत्व को स्पष्ट करना चाहिए कि वह उसके किस पहलू को भारत के लिए अनुकरणीय मानता है। आंदोलन के दौरान हुई मौतों, अराजकता, सांप्रदायिक हिंसा और उसके बाद भी सामान्य छात्रों के सामने बनी रोजगार की समस्याओं को देखते हुए, उसे प्रेरणा बताने का आधार क्या है?

भारत में शांतिपूर्ण आंदोलन, सरकार की आलोचना और चुनावों के माध्यम से सत्ता परिवर्तन की माँग लोकतांत्रिक व्यवस्था का हिस्सा हैं। लेकिन हिंसा, भय या दबाव के सहारे संवैधानिक प्रक्रियाओं को दरकिनार कर सत्ता परिवर्तन का प्रयास लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के विपरीत होगा। इसलिए युवा छात्रों को अपने विवेक और स्वतंत्र सोच के आधार पर आंदोलन के नेतृत्व के लक्ष्य, साधन और राजनीतिक मंशा को परखना चाहिए। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि उनका समर्थन किस अंतिम उद्देश्य के लिए माँगा जा रहा है और उससे उनकी वास्तविक समस्याओं का समाधान कैसे होगा। व्यवस्था में सुधार एक सतत प्रक्रिया है। इसके लिए प्रमाणों के आधार पर शिकायतें उठाने, व्यावहारिक समाधान सुझाने और उनके क्रियान्वयन पर लगातार काम करने की जरूरत होती है। यदि आंदोलन एक इस्तीफे का श्रेय लेने के बाद अगले राजनीतिक लक्ष्य की ओर बढ़ जाए, तो पिछली समस्याओं के समाधान का हिसाब माँगना और भी जरूरी हो जाता है। देश तभी मजबूत होगा, जब युवा छात्र लोकतांत्रिक तरीकों से जिम्मेदारी के साथ वास्तविक समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास करें और ठोस सुधारों को अपनी सफलता की कसौटी बनाएँ। जिस देश में भगत सिंह, खुदीराम बोस, करतार सिंह सराभा, हेमू कालाणी और अशफ़ाक़ उल्ला ख़ाँ जैसे युवाओं के साहस, त्याग और देशप्रेम की समृद्ध विरासत हो, वहाँ के युवाओं के लिए बांग्लादेश के आंदोलन में सक्रिय हिंसक और उपद्रवी तत्व कभी भी प्रेरणा के स्रोत नहीं हो सकते। उनकी प्रेरणा देश के प्रति समर्पण, स्वतंत्र चिंतन और जनहित के लिए जिम्मेदारी से संघर्ष करने की अपनी विरासत होनी चाहिए।